Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 3, May-2018, ISSN 2230-7540

योग दर्शन एवं भारतीय संस्कृति

Dr. Vikash Kumar*

(M.A, PhD) Philosophy Department, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur

सारांश – *भारतीय संस्कृति की 'योग' एक महत्वपूर्ण दार्शनिक विचारधारा है। इसका प्रमुख विषय आत्मसाक्षात्कार है। इसकी चर्चा वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि सभी ग्रन्थों में प्राप्त होती है। अन्य दर्शनों की अपेक्षा इसकी एक अपनी विशेषता यह है कि यह केवल सैद्धान्तिक ही नहीं बल्कि व्यावहारिक भी है। स्वस्थ शरीर तथा सबल आत्मा दोनों ही इसके प्रतिपाद्य विषय हैं। इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि है। इनके दर्शन को पातंजल दर्शन कहते है। योग-दर्शन का पहला ग्रंथ 'योगसूत्र' या 'पातंजल योगसूत्र' है। यह ग्रंथ योग-दर्शन का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। मूलतः योग तत्त्वज्ञान का अभ्यास है। "दुःख संयोगवियोगं योग संज्ञितम्" गीता में दुःख के संयोग-वियोग को योग कहा है। "योगः कर्मसु कौशलम्" कर्मों में कुशलता का नाम योग है। "समत्वं योग उच्यते" फल की तृष्णा से रहित होकर किये जाने वाले कर्मों की सिद्धि और असिद्धि के समत्व बुद्धि रखना योग है। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं (पातंजल योग दर्शन, सूत्र 2)। महर्षि पंतजलि जी ने योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। कैवल्य अथवा मोक्ष प्राप्त करने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण और जिन साधनाओं को करना आवश्यक है उसका विस्तृत विवरण योग-दर्शन में ही मिलता है। योग-दर्शन का 'सांख्य' के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सांख्य में यदि सैद्धान्तिक पक्ष है तो उसका व्यावहारिक पक्ष योग में मिलता है। एक तरह से इन दोनों को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। उपनिषद में सबसे पहली बार योग का उल्लेख आया है। योग की क्रियाओं से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है मन स्थिर होता है, हृदय पत्रि होता है, आत्मा भौतिक जीवन से ऊँची उठ जाती है और ब्रह्म को समझने में सुगमता होती है।*

भारतीय संस्कृति की धार्मिक एवं आध्यात्मिक परम्परा में योग का बहुत महत्व है। भारतीय संस्कृति के धार्मिक एवं आध्यात्मिक गूढ़ तथ्यों का ज्ञान तभी सम्भव हो सकता है जब मनुष्य का चित्त एवं हृदय शुद्ध एवं शान्त हो। आत्म शुद्धि एवं आत्म ज्ञान के लिए योग ही सर्वोत्तम साधन है। योग-दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आठ साधनों मान्यता दी गयी है। इन्हें जीवन में उतारने से शरीर, मन और इन्द्रियां संयम सीखाती हैं शारीरिक और आत्मिक तेज और बल से इसमें वृद्धि होती है। योगी अपनी साधना के बल पर त्रिकालदर्शी हो सकता है। योग साधना का वास्तविक लाभ मोक्ष की प्राप्ति है। वर्तमान में, मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग की उपयोगिता दिन-प्रति-दिन दुनिया के सम्मुख रखी जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर योग दिवस मनाये जा रहे हैं। वर्तमान में योगाभ्यास की वही उपयोगिता और उपादेयता है, जो प्राचीनकाल में थी।

कुंजीः *पातंजल योग दर्शन, भारतीय संस्कृति, आत्म साक्षात्कार, अष्टांग साधन*

----------X----------

भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का मूल आत्मा के दर्शन (ज्ञान) में निहित है एवं उद्देश्य मनुष्य को शान्ति एवं सुख प्रदान करना है। उनका मानना है कि मनुष्य चाहे कितनी ही उपाधियों, यश-प्रतिष्ठा, धन-ऐश्वर्य को क्यों न प्राप्त कर लिया हो, जीवन पथ पर रोग, अभाव, विश्वासघात, हानि, वियोग, अपमान, अन्याय से सम्बन्धित दुःख आ ही जाते हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में मनुष्य चिन्तित, निराश एवं अशान्त हो जाता है। सारी आशाएँ एवं कल्पनाएँ नष्ट हो जाती हैं। सब कुछ अन्धकारमय दिखाई देता है। घटनाओं से सम्बन्धित विचारों पर नियंत्रण न रख पाने के कारण मनुष्य अत्यन्त क्षुब्ध अथवा पागल सा हो जाता है। कोई भी समाधान न प्राप्त कर सकने के कारण उत्पन्न हुए महादुःख से बचने के लिए वह कुएँ में गिरकर, विष खाकर, मिट्टी का तेल डालकर, गाड़ी के नीचे आकर, फाँसी के फन्दे पर लटक कर या अन्य किसी प्रकार से जीवन को ही समाप्त कर लेता है। अथवा क्रोध के वशीभूत होकर दूसरों का अनिष्ट कर देता है, फिर चाहे परिणाम स्वरूप जीवन भर पश्चाताप की अग्नि में क्यों न जलना पड़े या जेल के बन्धन का जीवन क्यों न काटना पड़े। ऐसी अवस्था में यदि मनुष्य अपने मन में उठने

www.ignited.in

वाले इन प्रतिकूल विचारों को रोकने में समर्थ हो जाए अथवा इन विचारों से प्रभावित न हो अथवा इन समस्याओं का यथोचित समाधान निकाल ले, तो वह उपर्युक्त सभी अनर्थों से बच सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार, ईष्र्या-द्वेषादि मानसिक रोग हैं, इनका समाधान धन-सम्पत्ति से कदापि नहीं हो सकता। इन सब रोगों का समाधान तो आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी आत्मविद्या को पढ़-समझ कर और व्यवहार में लाने से ही सम्भव है।[1] योग दर्शन के प्रतिपाद्य विषयों में स्वस्थ शरीर तथा सबल आत्मा दोनों ही आते हैं।

वैदिक काल में, मन इन्द्रियों को रोककर आत्म-साक्षात्कार करने की इस क्रिया का इतना अधिक महत्व था कि पाँच वर्ष का छोटा सा बालक जब गुरुकुल में पढ़ने जाता था तब से ही आचार्य उसे प्रातःकाल ब्रह्ममुहुर्त से उठाकर, एकान्त शान्त स्थान में बिठाकर, आसन लगवाकर, आँखें बन्द कराकर, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि लगाने जैसी सूक्ष्म क्रियाएँ सिखाना प्रारम्भ कर देता था। ऐसा ही ऋषि-मुनि लोग स्वयं किया करते थे। दर्शनों में इस क्रिया को 'योग' (समाधि उपासना) नाम से कहा गया है। जीवात्मा चेतन है, ज्ञानी है, कत्र्ता है, मन आदि का चालक है। मन जड़ है। जीवात्मा प्रत्येक क्षण, अपनी इच्छा से ही, जड़ मन को प्रेरित करके, किसी न किसी वस्तु के विषय में चिन्तन = ज्ञान करता ही रहता है। मन के इस व्यापार अर्थात् कार्य के लिए दर्शनों में 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है। मन की बाह्य आन्तरिक विषयों से सम्बन्धित वृत्तियों को रोक देना 'योग' है।[2]

भारतीय संस्कृति की 'योग' एक महत्वपूर्ण दार्शनिक विचारधारा है। इसका प्रमुख विषय आत्मसाक्षात्कार है। इसकी चर्चा वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि सभी ग्रन्थों में प्राप्त होती है। अन्य दर्शनों की अपेक्षा इसकी एक अपनी विशेषता यह है कि यह केवल सैद्धान्तिक ही नहीं बल्कि व्यावहारिक भी है। स्वस्थ शरीर तथा सबल आत्मा दोनों ही इसके प्रतिपाद्य विषय हैं। इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि है। इनके दर्शन को पातंजल दर्शन कहते है। योग-दर्शन का पहला ग्रंथ 'योगसूत्र' या 'पातंजल योगसूत्र' है। यह ग्रंथ योग-दर्शन का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। मूलतः योग तत्त्वज्ञान का अभ्यास है। "दुःख संयोगवियोगं योग संज्ञितम्" गीता में दुःख के संयोग-वियोग को योग कहा है। "योगः कर्मसु कौशलम्" कर्मों में कुशलता का नाम योग है। "समत्वं योग उच्यते फल की तृष्णा से रहित होकर किये जाने वाले कर्मों की सिद्धि और असिद्धि के समत्व बुद्धि रखना योग है।" योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं (पातंजल योग दर्शन, सूत्र 2)। महर्षि पंतजलि जी ने योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। कैवल्य अथवा मोक्ष प्राप्त करने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण और जिन साधनाओं को करना आवश्यक है उसका विस्तृत विवरण योग-दर्शन में ही मिलता है। योग-दर्शन का 'सांख्य' के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सांख्य में यदि सैद्धान्तिक पक्ष है तो उसका व्यावहारिक पक्ष योग में मिलता है। एक तरह से इन दोनों को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। उपनिषद में सबसे पहली बार योग का उल्लेख आया है। योग की क्रियाओं से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है मन स्थिर होता है, हृदय पत्रि होता है, आत्मा भौतिक जीवन से ऊँची उठ जाती है और ब्रह्म को समझने में सुगमता होती है। योग शब्द सामान्यतया सम्बन्ध-वाचक है, परन्तु यहाँ योग का अर्थ है 'समाधि'। योग का उद्देश्य है चित्तवृत्ति का निरोधख्3, करके आत्मा के यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति। यह निरोध अभ्यास और वैराग्य से ही साध्य है। चित्तवृत्तिनिरोधरूप योग की दो अवस्थाएँ मानी गयी हैं। सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात में कुछ वृत्तियाँ रहती हैं परन्तु असम्प्रज्ञात समाधि में सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है। यही आत्मा की स्वरूप में स्थिति है।[4] योग सूत्र में योग के आठ अंगों का उल्लेख मिलता है जिसे अष्टांग योग -यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहर, धारणा, ध्यान, समाधि- कहते हैं। इन अंगों की साधना करने से अविद्या का नाश होकर ज्ञान की प्राप्ति होती है। वृत्ति के दो स्वरूप माने गये हैं - क्लिष्ठ और अक्लिष्ठ। चित्त की वृत्तियाँ जो आत्मा को संसार के बन्धन में बाँधे रखती हैं, उन्हें क्लिष्ठ अर्थात् दुःखदायी कहते हैं। विवेकख्याति अर्थात् प्रकृति-पुरुष विवेक की ओर ले जाने वाली वृत्तियाँ अक्लिष्ठ कही गयी हैं।[5]

योगदर्शन के अनुसार आत्मा को अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर लेना ही योग का लक्ष्य है।[6] आत्मा का स्वरूप वस्तुतः शुद्ध चैतन्य है, परन्तु बुद्धि के सम्पर्क में आकर अचेतन प्रतीत होने लगता है। यह अचेतन प्रकृति की देन है। जब ज्ञान से पुरुष को अपने शुद्ध रूप का बोध हो जाता है तो वह प्रकृति से अलग हो जाता है। तब वह प्रकृति-प्रसूत बुद्धि से मुक्त हो जाता है। योगदर्शन के अनुसार ज्ञान को चित्त की वृत्ति माना गया है। अतः सांसारिक ज्ञान पूर्णतः शुद्ध नहीं हो सकता। इसके लिए पारमार्थिक ज्ञान की आवश्यकता है। योगदर्शन में उसे प्रज्ञा कहा गया है। इस प्रज्ञा की सात अवस्थाएँ कही गयी हैं[7] - ज्ञेयशून्य, हेयशून्य, प्राप्यप्राप्त, चिकीर्षाशून्य, प्रज्ञा, लय, अमल।

यज् धातु के करण और भाव में घ् प्रत्यय जोड़ देने से योग शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ होता है - समाधि। सम्यक् प्रकार से भगवान् में मिल जाना ही समाधि कहलाता है। यह जीव भगवान् में तब मिल सकता है, जब वह कामना, आसक्ति और संस्कारों को परित्याग कर दे। इसलिये कहा गया है कि जीव और ब्रह्म के बीच जो स्वजातीय, विजातीय और स्वगत आदि भेद हैं उनका विमोनच करके एक हो जाना ही योग है।[8]

योग दर्शन में वर्णित अध्यात्म-विद्या से ही मनुष्य अपने नित्य, निराकार, एकदेशी, अणु, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान्, कर्ता, भोक्ता तथा चेतन 'जीवन-स्वरूप' को जान लेता है। इसी विद्या से समस्त संसार के भौतिक पदार्थों को भी जिसमें शरीरादि भी सम्मिलित हैं, जड़, विकारी, परिणामी, नाशवान् तथा दुःख मिश्रित - सुख देने वाले समझ लेता है और इसे जानकर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य, निराकार, अभय, पवित्र, आनन्द स्वरूप परमेश्वर के साथ उसका सम्बन्ध जुड़ जाता है और समाधि-काल में योग साधक ईश्वर से ज्ञान, बल, आनन्द, निर्भयता, स्वतन्त्रता आदि की प्राप्ति करता है।[9]

योग के माध्यम से मनुष्य अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण करके जिस विषय पर मन को लगाना चाहता है, लगा देता है और जिस विषय से मन को हटाना चाहता है, हटा लेता है। मन को नियंत्रण में रखने से ही वह प्रसन्न रहता है। योग के माध्यम से मनुष्य में एकाग्रता बढ़ती है, स्मृति-शक्ति विकसित होती है तथा बुद्धि सूक्ष्म होती है। इन सब आध्यात्मिकसम्पत्तियों की सहायता से उसके सारे कार्य सफल होते हैं। योग के माध्यम से अपने मन में विद्यमान काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईष्या, द्वेषादि के कुसंस्कारों को स्पष्ट रूप् से अनुभव करके, उनको विविध उपायों से नष्ट करने में सुल हो जाता है। अन्यथा इन संस्कारों की विद्यमानता में वह अनिष्ट कार्यों को करके दुःख को प्राप्त होता ही रहता है।

जगत् में व्याप्त दुःख जगत् के साथ ही नित्य हैं। ये दुःख तीन प्रकार के हैं - आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। आध्यात्मिक दो प्रकार का है - शारीरिक तथा मानसिक। ये दुःख रजोगुण के परिणाम हैं इसलिए जगद्व्यापी इस गुण के कारण जगत् ही दुःखमय है। योगदर्शन जगत् के सभी भोगों से जन्य फलों को दुःख मानता है। क्योंकि सुखानुभव में जिस वस्तु में अनुकूलवेदनीयता की अनुभूति होती है वह उनमें निश्चय ही राग (आसक्ति) होती है। अपनी विशेषासक्ति में वह अन्य बाधाओं के प्रति द्वेषभाव रखता है। इस प्रकार द्वेष तथा मोह के कारण यह हिंसा आदि पापों में लगता है जिसके कारण उसे सुखोपभोग के समय भी कष्ट उठाने पड़ते हैं। चंचलता के बारण बार-बार तृष्णा बनी रहती है, जिससे इन्द्रियों को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। भोगों की आवृत्ति तो और दुःखवर्धन का साधन है, जैसे वृश्चिकविध से बचने के लिए सर्पदंश का आश्रय लेना।[10]

दार्शनिक स्तर पर योग का अर्थ जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को प्राप्त करने के उपाय को भी योग कहते हैं। इस अर्थ में योग शब्द मार्ग या प्रणाली का पर्याय है, जैसे भक्तियोग का भक्तिमार्ग, ज्ञानयोग का ज्ञानमार्ग, कर्मयोग का कर्ममार्ग। पतंजलि के योग को राजयोग कहा गया है। राजयोग से भिन्न हठयोग है, जिसका मूल तन्त्र ग्रन्थों में मिलता है। योग के दो ही भेद अधिक प्रचलित हैं - राजयोग और हठयोग। यद्यपि योग की प्रणालियाँ अनेक हैं। भारतीय योग परम्परा बहुत ही विस्तृत है।

योग दर्शन में आत्मज्ञान के तीन प्रमुख साधन माने गये हैं - श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन या समाधि। इस प्रकार योग आत्मज्ञान की प्राप्ति के एक साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। योग शब्द का शाब्दिक अर्थ दो या दो से अधिक तथ्यों का मिलन होता है।

योग के आठ अंग हैं -यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।[11] इनके निरन्तर अभ्यास से अपान वायु उदान वायु से, उदार और अपान वायु का समान वायु से; उदान, अपान और समान वायु का व्यान वायु से और इन चारों का प्राण वायु से पहले मिलन कराया जाता है। ये पाँचों वायुओं का जब योग हो जाता है, तब इसका योग प्राण से कराया जाता है। इस अभ्यास के बार-बार करने से जीवन अपने आत्म स्वरूप में अवस्थित हो जाता है और चूँकि आत्मा परमात्मा का एक अंश है इसलिए इसी स्थिति में ब्रह्मज्ञान की भी उपलब्धि हो जाती है। अष्टांगयोग को अविद्या आदि क्लेशों अशुद्धि को क्षय करने वाला एवं विवेकख्याति को उत्पन्न करने वाला बताया गया है और इसके पक्ष में उत्पत्ति, स्थिति, अभिव्यक्ति, विकार, प्रत्यय, आप्ति, वियोग, अन्यत्व एवं धृति नामक नौ कारणें को उपस्थिति किया है।

भारतीय संस्कृति की धार्मिक एवं आध्यात्मिक परम्परा में योग का बहुत महत्व है। भारतीय संस्कृति के धार्मिक एवं आध्यात्मिक गूढ़ तथ्यों का ज्ञान तभी सम्भव हो सकता है जब मनुष्य का चित्त एवं हृदय शुद्ध एवं शान्त हो। आत्म शुद्धि एवं आत्म ज्ञान के लिए योग ही सर्वोत्तम साधन है। योग-दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आठ साधनों मान्यता दी गयी है। इन्हें जीवन में उतारने से शरीर, मन और इन्द्रियां संयम सीखाती हैं शारीरिक और आत्मिक तेज और बल से इसमें वृद्धि होती है। योगी अपनी साधना के बल पर त्रिकालदर्शी हो सकता है। योग साधना का वास्तविक लाभ मोक्ष की प्राप्ति है। वर्तमान में, मानसिक, शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग की उपयोगिता दिन-प्रति-दिन दुनिया के सम्मुख रखी जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर योग दिवस मनाये जा रहे हैं। वर्तमान में योगाभ्यास की वही उपयोगिता और उपादेयता है, जो प्राचीनकाल में थी।

www.ignited.in

सन्दर्भ:

1. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मनतवयो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

   -बृहदारण्यकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2025, 4-5.

2. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

   -पातंजलयोगदर्शन, ब्रह्मलीनमुनि, चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1970. सूत्र 1.2.

3. योगश्चित वृत्ति निरोधः।

   -योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 1.2.

4. योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 1.3.

5. योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 1.5.

6. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः।

   कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।।

   -योगसूत्र व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 4.33.

7. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा।

   -योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 2.27.

8. -योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 2.15.

   तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

   -पातंजलयोगदर्शन, ब्रह्मलीनमुनि, चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1970, सूत्र 1.3.

9. श्चिकविषीत इवाशीविषेण दृष्टो यः सुखार्थो विषयानुवासितो महति दुःखपे निमग्न इति। -योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 2-15 पर व्यासभाष्य.

10. ...ज्ञानस्यापि साधनानीत्याशयेन सूत्रभाष्याभ्यां विवेकख्यातिसाधनविधयैव निर्दिष्टानि। तानि च यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधाय इति। एतान्यष्टौ योगांनि भवन्ति। -योगसारसंग्रह, विज्ञानभिक्षु, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2014, द्वितीय अंश.

Corresponding Author

Dr. Vikash Kumar*

(M.A, PhD) Philosophy Department, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur